खबर न्याय अन्याय की...

RNITC-UPHIN38806
www.judgementaajtak.com

जजमेंट आजतक

वर्ष 4, पृष्ठ 12, सहयोग राशि : यथाशक्ति | सम्पादकः अम्बिका प्रसाद, एडवोकेट | 2014, लखनऊ अंक-XXV

हम हर वर्ष १५ अगस्त को आजादी की वर्षगांठ क्यों मनाते हैं? यह बात किसी स्कूल के बच्चे से भी पूछी जाय तो वह बता देगा कि इसी दिन देश अंग्रेजों से आजाद हुआ था लेकिन आजादी के इन ६८ वर्षों के बाद भी हम अगर व्यवस्था के लिए जिम्मेदार बुद्धिजीवियों, नेताओं आदि से यह सवाल पूछे तो शायद उनको जवाब देने में परेशानी होगी।

क्या आजादी सिर्फ १५ अगस्त को स्कूलों, दफ्तरों में झंडा ऊँचा रहे हमारा गाने के लिए और मिठाई खाने के लिए ली गयी या इसका उद्देश्य कुछ और था आखिर हमने अंग्रेजों को अपना भाग्यविधाता मानते रहने से क्यों इनकार किया और जिन्हें अपना (भारत) भाग्यविधाता बनाया उन्होंने किसका भाग्य बनाया? ये सारे सवाल संवेदनाशून्य नेताओं के लिए शब्द मात्र हैं लेकिन संवेदनशील नागरिकों के मन, विचार व हृदय को अन्दर तक झकझोर देते हैं।

देश कानून से चलता है लेकिन हमारे देश के जिन सदनों पर कानून बनाने की जिम्मेदारी है वे औचित्यहीन हो गये हैं उनका कोई मतलब नहीं रह गया है अब सदनों में नीतियां अपने फायदे, अपनो को फायदा पहुचाने वालों के लिए बनती हैं उदाहरणार्थ जब पहली संसद की शुरुआत १९५२ में हुई थी तब सांसदो को वेतन नहीं मिलता था, सांसदों को सदन की बैठक के तीन दिन पहले और तीन दिन बाद २१/- प्रतिदिन के हिसाब से भत्ता मिलता था और आने जाने के लिए रेल में प्रथम श्रेणी की सुविधा। उस समय अधिकांश बहस कानून बनाने के लिए होती थी। वेतन की व्यवस्था १९५४ से शुरु हुई जो बिल्कुल नाम मात्र की थी। आज जो व्यवस्था है उसको तो कभी सपने में भी नहीं सोचा गया था आज जनप्रतिनिधि अपनी तुलना बाबुओं/ नौकरशाहों से करते हैं और लक्ष्य भी अब सेवा नहीं स्वार्थ और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति है। जहां तक कानून बनाने एवम् जन समस्याओं के निराकरण की बात है वह औसतन ५ प्रतिशत रह गयी है।

आज कार्यपालिका पूरी तरह से विधायिका पर हावी हो गयी है। जाहिर सी बात है जब सरकार पूर्ण बहुमत वाली होती है तो वह विरोधी दलों की बात क्यों सुनने के लिए तैयार हो जबकि विपक्ष में कभी-कभी ऐसे विद्वान सदन के सदस्य होते हैं जिनके सुझावों से लोकतंत्र का फायदा हो सकता है उदाहरण के तौर पर प्रख्यात समाजवादी चिंतक डॉ. राम मनोहर लोहिया का जिक्र आवश्यक है-

डॉ. राम मनोहर लोहिया जब १९६३ में फर्रुखाबाद लोकसभा सीट से उपचुनाव जीतकर १३ अगस्त को पहलीबार संसद में प्रवेश किये तो वह दिन संसद के संसदीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में दर्ज हो गया। डॉ. लोहिया ने जब कदम रखा तो पहली बार किसी साधारण सदस्य के स्वागत के लिए (जिनकी प्रतिभा असाधारण थी) पूरा सदन खड़ा हो गया यहां तक कि प्रधान मंत्री पंडित नेहरू स्वयं भी खड़े हो गये थे।

हम आज यह सवाल पूछते हैं कि क्या आज ऐसे लोग सदनों में आ रहे हैं? क्या किसी विपक्षी के लिए सत्ताधारी यह सद्भावना दिखाते हैं। नहीं, आज सदनों का व्यवहार मछली मंडी से भी बदतर हो गया है। जिस तरह का नजारा सदन में देखने को मिलता है, लात जूता, गाली गलौज, मारपीट, तोड़फोड़ इसकी कल्पना तो शायद आजादी का संघर्ष करने वालों ने उसके बाद संविधान बनाने वालों ने कभी नहीं की होगी। सदनों से प्रश्नकाल व शून्य प्रहर तो लगभग गायब ही हो गये हैं जिनमें जनता से संबंधित कार्य होने हैं। जनहित का कानून बनाना अब इन सदनों के बूते की बात नहीं है। अल्पमत/गठबंधन या साधारण बहुमत की सरकारों को छोड़ भी दें तो यह देखा जा रहा है कि प्रचण्ड बहुमत (२/३ से अधिक) वाली सरकारें भी सक्षम कानून बनाने में अक्षम व असफल साबित हुई हैं।

सदनों में हंगामा, अवरोध व बाधित करने वालों की एक विशेष ट्रेनिंग होती है और सत्ताधारी जिस विधेयक को पास कराने की मंशा नहीं रखते उस पर विपक्ष अगर हंगामा नहीं करता तो वह स्वयं करा देता है लोकपाल बिल का राज्यसभा प्रकरण इसका ज्वलंत उदाहरण है।

अब तो बाकायदा एक हंगामा ब्रिगेड तैयार की जाती है। जब व्यवस्था या यूं कहा जाय कि अव्यवस्था के विरुद्ध हिन्दी गजल सम्राट दुष्यन्त कुमार ने आवाज उठायी तो कुछ लोगों ने उस पर प्रश्न चिन्ह खड़ा किया तो उन्होंने जवाब दिया-

"सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि सूरत बदलनी चाहिए।।"

आज की स्थिति ठीक इसके उलट है-

"सिर्फ हंगामा खड़ा करना ही हमारा मकसद है,
हमारी कोशिश है कि ये सूरत कतई न बदले।।"

मित्रों अगर सूरत बदल गयी तो बहुत कुछ बदल जायेगा।

पारदर्शिता का सवाल

जजेज की नियुक्तिः *व्यवस्था कोई भी हो पारदर्शिता के अभाव में स्थिति में कोई बदलाव सम्भव नहीं*

राजा तु धार्मिकान् सभ्यान् नियुञ्ज्यात् सुपरीक्षितान् व्यवहार धुरं वोढं ये शक्ताः यद्भवा इव धर्मशास्त्रार्थ कुशलाः कुलीनाः सत्यवादिनः समाः शत्रो च मित्रे च नृपते स्युः सभासदः (नारद ३६-४-५ धर्मकोश-४३)

Let the King appoint, as member of the courts of justice honourable men of proved integrity, who are able to bear the burden of administration of justice and who are well versed in the sacred laws, rules of prudence who are noble and inpartial towards friends or foes.

❍अम्बिका प्रसाद

उच्च न्याय पालिका में जजेज की जो भी नियुक्ति व्यवस्था थी या है उसमें कमियों के बावजूद एक से बढ़कर एक प्रतिभावान जजेज की नियुक्तियां हुई जिनके निर्णय का लोहा पूरा विश्व मानता है फिर भी जब उंगली उठ जाय तो समाधान आवश्यक है।

सीता जी को जब राम चन्द्र जी लंका विजय के बाद वापस लाये तो यह जानते हुए भी की वे पहले की तरह पवित्र हैं उनकी अग्नि परीक्षा ली उसके बावजूद जब उनकी प्रजा के एक धोबी ने उंगली उठा दी तो उन्होंने सीता का परित्याग सिर्फ इसलिए कर दिया कि प्रजा में राजा के प्रति कोई संदेह नहीं होना चाहिए।

बहुत सारी कमियों—खामियों के बावजूद भारतीय न्यायपालिका में ऐसे जजेज हुए और आज भी हैं जिनके योग्यता, निर्णय क्षमता व ईमानदारी से आज भी लोगों का विश्वास उस पर बना हुआ है तथा जो अपने कार्य को कुशलतापूर्वक करते हुए इस संस्था की गरिमा को बचाने के प्रयास में लगे हैं। ऐसे ईमानदार जज पूरे देश को यह संदेश देने में सक्षम हैं और दिए भी हैं कि न्याय से ऊपर कोई नहीं।

उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त जज की अन्तश्चेतना रिटायरमेण्ट के तीन वर्ष बाद और जब यूपीए सरकार की कृपा स्वरूप प्राप्त भारतीय प्रेस परिषद का अध्यक्ष पद अन्तिम चरण में है, जागृत होकर उच्च न्यायालय व उच्चतम न्यायालय में जजेज की नियुक्ति प्रक्रिया में भ्रष्टाचार का जो खुलासा किया है उससे इस संस्था पर जितने गम्भीर प्रश्न खड़े हुए है उससे अधिक गंभीर प्रश्न काटजू की दस साल की चुप्पी पर खड़े हो रहे हैं।

पारदर्शिता ईमानदारी का पहला सोपान है जबकि गोपनीयता भ्रष्टाचार की जननी व Discretion उसका पालन पोषण कर्ता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में जनता को दो

शेष पेज २ पर जारी..

अब मूर्तियां भी पूंछ हिलाने वाली चाहिए

कोई भी सरकार ऐसा मंदिर नहीं चाहती जो उसकी लूट खसोट में बाधा डाले। जो मूर्तियां मंदिरों में विराजमान होती हैं वे तरह-तरह की भावभंगिमाओं वाली होती हैं और उनका यह व्यवहार उनकी योग्यता, ज्ञान क्षमता पर होता है लेकिन बहुत सारी मूर्तियां ऐसी हैं जो स्थापना के बाद स्थापित करने वाले और पुजारी से ज्यादा आने वाली जनता की भलाई में अपना ध्यान लगा देती हैं ये पुजारी और संस्थापक दोनों को नागवार लगता है।

अब मंदिर मैनेजर इस बात के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो गये हैं कि उनको अब पूंछ हिलाने वाली मूर्तियां ही चाहिए ऐसी मूर्ति नहीं चाहिए जो आंख दिखाये। कुछ दिनो पहले जो कुछ हुआ वह इसका स्पष्ट संकेत है। आंख दिखाने वाली को रोककर पूंछ हिलाने वाली को स्थापित करने की पूरी व्यवस्था हो रही है।

काटजू को अब एन.डी.ए. से क्या चाहिए?

गवर्नरी या विस्तार। दस वर्ष की चुप्पी के बाद जब काटजू का सेवा निवृत्ति के बाद यूपीए सरकार द्वारा कृपा स्वरूप प्रदत्त 'स्वीटेबल एडजेस्टमेंट' का कार्यकाल चन्द दिनों में समाप्त हो रहा है तो उस जज की नियुक्ति के बारे में जो अब इस दुनिया में भी नहीं है, हुई अनियमितता को सार्वजनिक करने के क्या निहितार्थ हैं। यह बहस उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी इस नियुक्ति के माध्यम से उच्च न्यायपालिका में जजेज की नियुक्ति प्रक्रिया की वैकल्पिक व्यवस्था।

क्या यह खुलासा एन.डी.ए. सरकार के नजदीक आने का प्रयास है? ज्ञात हो कि प्रश्नगत जज की नियुक्ति ३ अप्रैल २००३ को हुई थी उस समय केन्द्र में अटल बिहारी बाजपेयी की भाजपा नीत नेशनल ड्रेमोक्रेटिक एलायंस की सरकार थी और जब दो बार १.४.२००५ और ३.०८.२००५ को जज का अतिरिक्त जज के रूप में कार्यकाल बढ़ाया गया तो काटजू ही मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश थे। काटजू का कार्यकाल मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में २८.११.२००४ से १०.१०.२००५ तक था।

भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीशों के ऊपर तो सरकार का दबाव था लेकिन काटजू के ऊपर किसका दबाव था जो मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में अतिरिक्त जज के कार्यकाल विस्तार की सिफारिश किये और यदि बिना उनकी सिफारिश के कार्यकाल बढ़ा था तो उन्होंने किस लालच में इसका ऐसा ही खुलासा उस समय क्यों नहीं किया जैसा आज कर रहे हैं? क्या यह न्यायपालिका के साथ-साथ देश के साथ अन्याय नहीं था?

जहां तक उच्च न्यायालय व उच्चतम न्यायालय में जजेज की नियुक्ति का प्रश्न है उसमें **Ability** से अधिक **suitability** देखी जाती है लेकिन यह कहीं नहीं है कि **suitability** किसके लिए होनी चाहिए सरकार/कोलेजियम के सदस्यों के प्रति, देश के प्रति, संविधान के प्रति या किसी व्यक्ति विशेष के प्रति। क्या काटजू यह बताएंगे कि जब उनकी नियुक्ति हुई थी तो क्या उनसे अधिक चरित्रवान, ईमानदार, काबिल वकील नहीं थे जिनको किनारे करके उनकी नियुक्ति हुई?

जहां तक भ्रष्टाचार की बात है तो भ्रष्टाचार सिर्फ आर्थिक ही नहीं होता भ्रष्टाचार वैचारिक, नीतिगत और चारित्रिक भी होता है। चारित्रिक भ्रष्टता आर्थिक भ्रष्टता से अधिक नुकसानदायक होती है।